शुक्रगुज़ार आँखें

हयातुल्लाह अंसारी

शुक्रगुज़ार आँखें

पिछले मंगलवार, **26** जुलाई सन् **48** से पहले मेरे सीने में तपते हुए सात-सात छाले थे और सातों ने मिलकर दिल को फोड़ा बना दिया था। मां-बाप के कत्ल के छाले,

भाई-बहन के कत्ल के छाले, युवा बेटे के कत्ल का छाला, बहादुर बेटी के कत्ल का छाला और जन्मसाथी घर की लक्ष्मी के कत्ल का छाला। अल्ला हो अकबर के नारों, पवित्र दाढ़ियों और पेशानी पर नमाज के चिन्हों ने इन शरीरों के भीतर से किस बेदर्दी से जान निकाली है। मां और धर्मपत्नी के साथ कैसी-कैसी शर्मनाक हरकतें। फूल-सी बच्ची का उसकी मां के सामने हलवा बनाया जाना-ओफ ! मैं स्वयं कैसे बच गया और कैसे उस शरणार्थी कैम्प तक आया, ये भी एक कष्टदायक कहानी है। और पिछली कहानियों का वर्णन करना मेरे बस में नहीं था। अब साहस तो है पर सामर्थ्य नहीं। क्योंकि जितने शब्द दर्द को दिखाने के लिए मेरे पास हैं, दिल उन सबको निकम्मा घोषित कर चुका है।

पिछला मंगलवार अर्थात मेरे नवजीवन से पहले के सारे भयानक दृश्य सैकड़ों बार मेरे दिल में आकर घूम जाते थे और जाते समय मुझे खौलते कढ़ाव में झोंक देते थे जिसमें जलते-जलते, झुलसते-झुलसते मैं सम्पूर्ण आग का गोला बन जाता था। और फिर एटम बम बनकर इस्लामी दुनिया पर गिरता था। इसे भस्म कर डालता था और स्वयं भी भस्म हो जाता था।

पिछले मंगलवार को आधी रात तक मैं करवटें बदलता रहा पर पलक-से-पलक न लगी। घनघोर घटाएं बरस कर खुल चुकी थीं। शरणार्थी कैम्प के आस-पास के पेड़ों में जुगनू जगमगा रहे थे और घावों को महकाने वाली हवा चल रही थी। इतने में बाबले पपीहे ने आवांज दी 'पी कहाँ, पी कहाँ' यह आवांज दिल में बन्दूक की गोली की तरह उतरती चली गयी और मुझे मेरी जन्मभूमि में उड़ा ले गयी। मूँछें, दाढ़ी, वह चहल-पहल!! हाय वो हँसी और कहकहे!! हाय वो नित नए आराम। इन यादों से कैम्प जेलखाना बन गया। जीवन में अन्धकार छा गया। मैं विवश होकर दीवानों की तरह अँधेरे वीरानों में चल पड़ा।

मैं तेजी से एक ओर चला जा रहा था, भागा जा रहा था। जैसे लपक कर मैं गुजरे हुए दिनों को पकड़ने जा रहा हूं।

पता नहीं कितनी देर तक मैं चला और कितनी दूर निकल गया। एक बार होश जो आया तो देखता क़्या हूं कि एक खंडहर ने मुझे चारों ओर से घेर लिया है। वह अपने

साथ बहुत-सी रौंदी हुई समाधियाँ भी लाया है। बीच में एक टूटा हुआ गुम्बद है। जो अन्तिम दिनों के चाँद की रोशनी में अपनी इकलौती उँगली से फटे हुए बादलों की ओर इशारा कर रहा है। मुसलमानों का स्थान।

मेरे दिल में एक साथ शांति और जलन के भाव पैदा हुये मगर एकाएक मेरी निगाह एक जगह रुक गयी . समाधियों के बीच एक समाधि अंगडाई ले रही थी . अँगडाई लेकर वो उठी और मेरी ओर बढी-क़्या मुसलमान? मैं ठिठका और डर महसूस किया. देखा कि वह आदमी बढ़ता ही चला आ रहा है तो मैंने कड़ककर पूछा-

"हिन्दू हो कि मुसलमान**?**"

वह आदमी मेरे बिलकुल पास आ गया।

"वह तो हिन्दू है।"

"वह कौन**?**"

"वही**?**"

"क्या यहाँ कोई और भी है**?**"

उस आदमी ने घूम कर इधर-उधर देखा फिर बोला-

"नहीं तो।"

"मैं तुमसे पूछता हूं**,** बताओ कि तुम कौन हो**?** हिन्दू या मुसलमान**?**"

"मैं**...**मैं**...**मैं**?** मैंने उस पर कभी ध्यान ही नहीं दिया।"

"तुम झूठे हो**,** नि:सन्देह तुम मुसलमान हो पर डर के कारण छुपा रहे हो।"

"डर किसका**? €**या कोई मुझको डरा रहा है।"

इतना कह के वह आदमी बडे अ ाराम से समीप की ही एक समाधि पर बैठ गया। उसका चेहरा उलझे बालों, मिट्टी और तिनकों का एक झुंड था जिसकी महीनों से

पानी, कंघी और कैंची से मुलाकात नहीं हुई थी। उसकी मूँछें और दाढ़ी बड़ी झाड़ियों की तरह थीं जिन्होंने होंठों और नाक से नथुनों तक को ढक लिया था। सर के बालों की लटें इस प्रकार गालों और ललाट पर झूल रही थीं जैसे गड़रिये भिखारी की। कॉलरा के रोगी की तरह इसके चेहरे पर खून की छींट तक न थी पर इन सारी अर्थहीन वस्तुओं के भीतर इसकी आँखें इस प्रकार चमक रही थीं जैसे गहरे कुएँ के अन्दर मोती जैसा पानी, जिसमें समुद्रों को उलट-पलट कर देने वाली आँधियाँ तक हलकी-सी लहर भी नहीं पैदा कर सकती हैं। अपनी आँखों की शान्ति और विश्वास के कारण वह आदमी इस दंगों और खून वाली दुनिया का वासी ही नहीं मालूम होता था। मैं इस शान्ति को देखकर घबरा-सा गया। पर फिरा मेरा दिल मचलने लगा कि इसकी नंजरों में डूबने लगा।

एकाएक इसकी आँखों ने पलकों के अन्दर छलाँग लगायी और कुछ इस तरह निकलीं कि मुझे डर का आभास हुआ। इसकी आँखों में शान्ति और विश्वास के साथ-साथ कुछ और भी था। कोई डरावनी और घिनौनी-सी वस्तु, मैंने अपने आप को इसके चमत्कारी प्रभाव से अलग किया और चलने के लिए उठ खड़ा हुआ।

मुझे उठता देख वो आदमी बोला-

"तुम मुझसे घृणा करते हो, मैं तो वो नहीं हूं।"

"वही कौन? मुसलमान।"

"नहीं वह तो मुसलमान नहीं है। परन्तु उसने कई मुसलमानों का कत्ल किया है और मुसलमान महिलाओं को अपवित्र किया है।"

"वह कौन है मैं नहीं समझा।"

"वह वही, तुम उसे नहीं जानते, अच्छा तो बैठो, मैं बताता हूं कि वो कौनहै?"

2

वह-

एक रेलगाड़ी के डिŽबे में चालीस-पचास मुसलमान पुरुष-महिलाएं और बच्चे भरे हुए थे। ये सबके सब शरणार्थी थे। कोई घायल था, कोई बीमार, कोई भूख से मर रहा था तो कोई घर-परिवार लुट जाने पर आँसू बह रहा था। सबके सब भयभीत, वास्तविकता से एक आशाहीन आशा की ओर जा रहे थे। जा रहे थे चूँकि कहीं उनके लिए शरण नहीं थी।

काफिले के सामानों की ये हालत थी कि अगर किसी के एक पाँव में जूती थी तो दूसरे में नहीं। एक नवयुवती के कपड़े इस प्रकार तार-तार थे कि शरीर को ढँकना असम्भव था। एक आदमी को कहीं से एक फटा लहँगा मिल गया था। जिसे वो लुंगी बनाकर कमर ढँके हुए था। लेकिन किसी को इन बातों की ओर ध्यान देने का समय नहीं था और अब तो शि€त तक नहीं थी। सब अपनी-अपनी आग में डूबे गुम थे। बड़े-से-बड़े दुखी की पुकार उनके कानों के भीतर नहीं जा सकती थी।

पर एक कोने में मानवता की कुछ महक थी। नई-नवेली दुल्हन अपने घायल पति को बड़ी बहादुरी और चालाकी से खूनी हत्यारों के चंगुल से निकाल आयी थी। मुसांफिरों में एक डा€टर भी था जिसने घाव देखकर कहा कि अगर कहीं से गर्म पानी और साफ कपड़ा मिल जाए तो मैं घाव धोकर पट्टी बाँध देता; तब कोई खतरा न रहता। लेकिन उस दुनिया में गर्म पानी कैसा? पीने तक के पानी का मिलना मुश्किल था। दुल्हन के आँचल के टुकड़े से घाव बाँध दिया गया था। और दुल्हन घायल बाजुओं को गोद में लेकर बैठी थी और मेहंदी रचे हाथ दूल्हे के सर पर इस तरह फेर रही थी जैसे उससे घाव को भरने में मदद मिलेगी।

रेल चल ही रही थी कि एक बड़ा धमाका हुआ। रेल रुक गयी। इसके रुकते ही दस-पन्द्रह यात्री जो डिब्बे में इधर-उधर मुंह डाले कराह रहे थे, बिफरे शेरों की तरह उठ खड़े हुए। किसी ने थैले के अन्दर से, तो किसी ने बिस्तर के अन्दर से कृपाणें, तलवारें निकाल लीं। और बिजली की तरह चमक कर यात्रियों पर टूट पड़े। बात-ही-बात में दस यात्रियों को तलवारों और कृपाणों से छलनी कर दिया। जो मर रहे थे उनकी चीखें और तेज हो गयी और जो बच गये थे उनकी घिघ्घी बंध गयी, और वह सीटों के नीचे छिपने का असफल प्रयास करने लगे। भाग निकलने का कोई रास्ता न था €योंकि रेल के नीचे भी सशस्त्र हत्यारे खड़े थे।

इन हत्यारों ने नारे लगाये-"हिन्दूमत ऊँचा हो।"

"महात्मा गांधी की जय।"

"मुसलमानों का नाश हो।"

एक महिला भागने के प्रयास में खिड़की से नीचे कूदी। जो हत्यारे खड़े थे उन्होंने झट से उसे पकड़ लिया और जिस प्रकार कोई केला छीलता है उसी तरह मिनटों में इन हत्यारों के अनुभवी हाथों ने उस महिला को ऊपर से नीचे तक नंगा कर दिया और फिर एक अभ्यस्त टाइपिस्ट की तरह अपनी हवस की जलन ठण्डी करने लगे। एक ओर नंगी औरतें इकट्ठा की जा रही थीं ताकि उनका जुलूस निकाला जा सके और उन्हें शर्मनाक से शर्मनाक मृत्यु से सामना कराया जा सके। ये सब कुछ तीव्रता से हो रहा था जैसे कोई बुध्दिमान बच्चा पहाड़ा रट रहा हो।

नई-नवेली दुल्हन जो ऐसी दुर्घटना अपनी आँखों से एक बार देख चुकी थी और दर्जनों बार उन महिलाओं से सुन चुकी थी, जो इनका शिकार हुई थीं,अच्छी तरह वह दुल्हन जानती थी कि इसका प्रारम्भ क़्या होता है और क्या इसकी सीमा है। वह एक नंजर में भाँप गयी कि परिस्थिति क्या है और निर्णय लिया कि क्या करना है। उसने अपना दोपट्टा लपेट कर तकिया बनाया और दूल्हे के घायल बाजुओं के नीचे रख दिया और फिर अन्दर और बाहर के हत्यारों पर नंजर डाली फिर बेधड़क एक हत्यारे के पास जाकर कहने लगी-

"महाशय जी! मेरी एक विनती है आपसे..."

"विनती! हम तो तुमको चौराहे की कुतिया बनाकर छोड़ेंगे। आखिर हम अपनी माओं-बहनों का बदला किससे लें? हाय रे मुसलमनती-ये उभार ये जवानी।"

हत्यारों ने अपनी तलवार की नोक दुल्हन की छाती में थोड़ा-सा चुभोयी जिससे कुर्ते पर खून छलक आया। उसके मुंह से हल्की-सी चीख तो निकली पर वह भागी नहीं। उसने इधर-उधर देखा, उधर एक आदमी खड़ा हुआ था। दुल्हन उसकी तरफ मुड़ी और बोली-

"महाशय जी! आप ही एक औरत की प्रार्थना सुन लें।"

वह कड़ककर बोला, "तुम्हारे मुसलमान भाइयों ने भी किसी हिन्दू औरत की प्रार्थना सुनी थी।"

दुल्हन ने हाथ जोड़कर विनम्रता से कहा-

"मेरी प्रार्थना केवल इतनी है कि आप मुझे-अपने दूल्हा की तरफ इशारा करके, इनके सामने अभी मार डालिए बस। बहुत अभारी रहूंगी मैं आपकी, खुदा के लिए ईश्वर के लिए।"

दुल्हन की बहादुरी की कहानी जो वह सुन चुका था शायद इस कारणवश या फिर इसके गिड़गिड़ाने के कारण, चाहे जो भी कारण रहा हो, हत्यारा पसीज गया। उसे दुल्हन पर दया आ गयी। उसने दुल्हन की कलाई पकड़ कर एक झटके से उसे उसके दूल्हे के निकट लाकर कहा-

"ले तेरी ही खुशी सही।"

उसने दुल्हन की गर्दन पर तलवार का एक भरपूर वार किया। दुल्हन एक चीख मार कर दूल्हे के पास गिर पड़ी। उसकी बुझती हुई जिन्दगी की अन्तिम चमक उसकी आँखों में सीता का प्रेम बनकर आ गयी और उसने उन आँखों से अपने पति को नंजर भर देखा-फिर घूम कर उसने हत्यारे को देखा।

जब दुल्हन ने कातिल की तरफ देखा तो इसके प्रेम की ललक सच्चे आभार की महक में बदल चुकी थी।

कितनी आभारी थी वह आँखें ! ओफो ! वह कह रही थीं-

"महादाता तुमने एक बेसहारा औरत पर जो उपकार किया है उसके लिए मेरा रोम-रोम कृतज्ञ है। पर अफसोस मैं जबान से आभार तक नहीं कर सकती। मगर मेरा विश्वास करो मैं उसकी प्यारी होकर मर रही हूं। अलविदा।"

दुल्हन ने अपना दम तोड़ता हुआ हाथ दूल्हे के घाव पर रखा। पथरायी हुई आँखें उधर मोड़ लीं और एक हिचकी लेकर खत्म हो गयी।

3

परछाईं-

बयान करने वाले ने अपनी कहानी जारी रखी-

एक पुरानी बात है दंगों से पहले जब कभी वह अपनी तलवार साफ किया करता था तो इसे इसकी आबदार सतह के नीचे एक परछाईं नंजर आती थी। जब इससे आँखें चार होती थीं तो वो कहता था-

"देखो इस आबदार तलवार को किसी निर्बल पर मत चलाना।"

वह जवाब देता था-

"मेरा मन कहता है, मैं ऐसा कभी न करूँगा।"

न जाने कितनी बार इस वचन को मैंने दोहराया। इस वचन के मैं बहुत समीप आ गया। जब तलवार दुल्हन के सीने से बाहर आयी तो दुल्हन की आभारी आँखों से उस परछाई की आँखें भी चार हुईं और परछाईं के दिल में समा गयीं। दिन गुजरते गये पर वह आँखें इसी तरह बेबस रहीं। वह अपने हाथ की हथेली को देखता तो वह आभारी आँखें नंजर आतीं। और जब आँखें बन्द कर लेता तो अपनी आत्मा के बिम्बों में वह आँखें नंजर आतीं-जिस तरह घनघोर घटा बरस कर निकल जाने के बाद धूप निकल आये। ऐसी धूप जिसका हर निगाह में चुभा जा रहा हो जैसे जॉरजट की साड़ी में सुडौल शरीर। इसी धूप की तरह वो आँखें परछाईं के दिल में खुली हुई रहती थीं।

-वह उपकारी आँखें!

-वह कृतज्ञ आँखें!

वह €या कहती थीं, क्या सन्देश देती थीं ये परछाईं को मालूम न था। मगर देती थीं कोई-न-कोई सन्देश वह आँखें, चुभने में मिठाई की डलियाँ थीं पर वास्तविकता में राइफल की गोलियाँ। छूने में बर्फ की कंकड़ियाँ थीं पर गले से उतारने पर विष में बुझी हुई पुडियाँ।

बयान करने वाले की नंजरों से सारी शान्ति समाप्त हो चुकी थी और अब ऐसी वहशत थी कि जी चाहता था इसकी हमदर्दी में मैं अपना सर फोड़ लूँ।

बयान करने वाला थोड़ी देर के लिए चुप हो गया फिर आसमान की तरफ सर उठाकर बोला-

-वह आभारी आँखें!

मैंने आसमान की ओर देखा तो वो बादलों से घिरा हुआ था और एक तारे का भी पता न था। बयान करने वाला ठंडा साँस भर के बोला, "फिर एक अजीब दुर्घटना हुई, एक रात मैंने इस पर अचानक आक्रमण कर दिया। जब वह अपना बचाव करने लगा तो हम दोनों में जबरदस्त कुश्ती हुई। अन्त में भोर होने तक मैंने उसे एक दाँव से पछाड़ दिया और अपने कब्जे में कर लिया। वह चीखता था, चिल्लाता था, गिड़गिड़ाता था, विनती करता था पर मैंने उसे नहीं छोड़ा। जानते हो मैंने उसके साथ क्या किया?"

यह कहकर बयान करने वाला अपने कपड़ों के भीतर से एक तलवार निकालकर, मुझे कहने लगा-

"मैं इस पर बड़ा उपकार करता हूं। वह यह कि इसके शरीर में छेद करके उन प्यारी-प्यारी आभारी आँखों को इन नगीनों की तरह जड़ता रहता हूं।"

बयान करनेवाला ये कहकर एक जहरीली हँसी हँसा और बोला, "बस इतनी-सी कहानी है।" कहानी का-सर-पैर तक मेरी समझ में न आया। फिर कुछ सोच कर मैंने कड़क कर कहा-

"बता तूने इन हत्यारों को कहाँ छुपा रखा है? तू हो न हो अवश्य मुसलमान है और एक बहादुर हिन्दू को सिसका-सिसका कर मार रहा है।"

उसने सादगी से मेरी तरफ देखा और पूछा, "तुम उसे देखोगे? अच्छा ये टॉर्च लो जब मैं कहूँ तब जला देना।"

उस आदमी ने एक पर एक न जाने कितने कुर्ते पहन रखे थे। उन सबको हौले-हौले उतार कर बोला-

"अब टॉर्च जलाओ।"

मैंने टॉर्च जो जलाया तो देखता क्या हूं कि उसकी छाती और बाजू घावों से गुंथे हुए हैं। कुछ घाव तो अभी तक हरे थे कुछ पुराने और कुछ तो इतने पुराने थे कि पक-पक कर सड़ गये हैं और उनमें कीड़े भिनभिना रहे हैं।

"ये हैं वो-ये देखो प्यारी आँखें।"

अब जो गौर से देखता हूं तो सचमुच उस आदमी ने तलवार की नोक से मांस में सैकड़ों आँखें खोदी थीं।

वह आदमी एक रिसते हुए घाव को अँगुली से मसल-मसलकर कहने लगा-

"ये प्यारी आभारी आँखें।"

मसलने से घाव इस प्रकार बहने लगा जैसे किसी बाई का पीकदान उलट गया हो। मगर उसकी आँखों में फिर वही शान्ति आ गयी थी जिस पर गर्व किया जा सके। सारी कहानी मेरे लिए एक पहेली थी जिसका बोझ लेना दिल का गवारा न था। मैंने पूछा-

"स्वयं तुम कौन हो?"

"मैं...मैं...मैं वही परछाईं हूँ।"

उस रात, मैंने जाना कि बहादुर मगर अत्याचार सहने वाला अत्याचारी से लाख गुना बड़ा कायर होता है।